हमारी बात

लगभग 70 साल पुरानी बात है, लेकिन आज भी उसका महत्व कम नहीं हुआ। यह सही है कि समाज में जागरूकता बढ़ी है, लेकिन मंजिल अभी भी बहुत दूर है।

पंजाब के एक शिक्षित, आर्थिक रूप से संपन्न और संभ्रात परिवार में एक लड़की पैदा हुई। उस समय जचगी घरों में ही होती थी और दाई यह काम करवाती थी। लड़की को देखते ही दाई ने माथा ठोका और कहा, "लो, एक पत्थर और आ गया।" परिवार में तीन साल की एक लड़की और थी। पहली लड़की तो लक्ष्मी कहलाती है, लेकिन दूसरी—पत्थर।

इस 'पत्थर' के मां-बाप शिक्षित थे और उन्होंने इस 'पत्थर' को सड़क के किनारे का बेकार समझा जाने वाला पत्थर नहीं माना। कुशल कारीगरों की तरह उन्होंने पत्थर को तराशा, चमकाया और समाज में उसे उच्च स्थान दिलवाया।

यह सुनी-सुनाई काल्पनिक कहानी नहीं। यह हमारी निजी अनुभूति है क्योंकि वह 'पत्थर' जन्मी लड़की मैं ही हूं।

आज भी हजारों-लाखों परिवारों में लड़की को बोझ मान उसके पैदा होते ही मायूसी छा जाती है। एक प्रचलित धारणा है कि 'लड़की तो दूसरे घर का पौधा है, उसे सींचने और मज़बूत करने पर मेहनत क्यों की जाए और फिर लड़कियां तो झाड़-फूस की तरह बढ़ती हैं, ध्यान दो या नहीं।

लड़की के जन्म से ही उपेक्षा, उसे लड़के की तुलना में कम ध्यान देना, शिक्षा इतनी कि अच्छा घर-वर पा ले, यह मानसिकता आज भी हमारे अधिकांश घर-परिवारों में है। यदि शुरू से ही लिंग-भेद के शिकार हुए बिना लड़के व लड़की का एक बराबर लालन-पालन हो, दोनों की सेहत का, शिक्षा का बराबर ध्यान रखा जाए तो लड़कियों की प्रतिभा मुखर होगी और वह समाज के विकास में भरपूर योग देगी।

शारदा जैन